(1) Deindustrialization
(2) अंग्रेजों ने 1813 के बाद एकतरफा मुक्त व्यापार की नीति लाद दी।
(3) मेजर कर्टे — संभाल
(4) नील — 1859 — नील आयोग — पावना और नादिया जिले के समस्त कृषकों ने, भारतीय इतिहास की प्रथम कृषकों की हड़ताल कर दी
(5) दक्कन विद्रोह - 1875 - मारवाड़ी और गुजराती साहुकारों के विरुद्ध, मारवाड़ी साहूकार कल्सूएम ने पावा लाइक दैशमुख के मकान को जिराया
(6) दक्कन उपद्रव आयोग + कृषक राहत अधि० — 1879 - 1879

अध्याय : 8

ब्रिटिश शासन का आर्थिक प्रभाव

ब्रिटिश विजय का भारत पर स्पष्ट और गहरा आर्थिक प्रभाव पड़ा । भारतीय अर्थव्यवस्था का शायद ही कोई पहलू रहा जिसमें अच्छी या बुरी दिशा में पूरे ब्रिटिश शासनकाल में परिवर्तन नहीं हुआ ।

परंपरागत अर्थव्यवस्था का विघटन

अंग्रेजों ने जो अर्थिक नीतियां अपनाई उनसे भारत की अर्थव्यवस्था का रूपांतरण एक औपानिवेशिक अर्थव्यवस्था में हो गया, जिसके स्वरूप और ढांचे का निर्धारण ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की जरुरतों के अनुसार हुआ । इस दृष्टि से ब्रिटिश विजय पहले की सभी विदेशी जीतों से भिन्न थी । पहले के सभी विजेताओं ने भारतीय राजनीतिक शक्तियों को उखाड़ फेंका मगर उन्होंने देश के आर्थिक ढांचे में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं किए । वे धीरे-धीरे भारतीय जीवन राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन के भाग बन गए । किसान, दस्तकार, और व्यापारी अपनी जिंदगी पहले के तरह ही जीते रहे । स्वावलंबी ग्राम अर्थव्यवस्था की बुनियादी अर्थिक बनावट को सदा बनाए रखा गया । शासकों के बदलने का मतलब था उन कर्मचारियों में परिवर्तन जो किसान के अधिशेष को वसूल करते थे । मगर ब्रिटिश विजेता बिल्कुल भिन्न थे । उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था के परंपरागत ढांचे को पूरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया । इसके अलावा, वे कभी भारतीय जीवन का अभिन्न अंग नहीं बन सके । वे भारत में हमेशा विदेशी बने रहे, भारतीय संसाधनों का उपयोग करते रहे और भारतीय समृद्धि को नजराने के रूप में ले जाते रहे ।

भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश व्यापार और उद्योग के हितों के अधीन करने के अनेक और विविध परिणाम हुए ।

दस्तकारों और शिल्पकारों की बर्बादी : शहरी हस्तशिल्पों का एकाएक और बहुत जल्द पतन हो गया । इन शिल्पों के कारण भारत का नाम समूची सभ्य दूनिया में शताब्दियों से लिया जाता रहा था । इस पतन का मुख्य कारण था : इंग्लैंड से आयात की जाने वाली मशीनों द्वारा बनाई गई सस्ती वस्तुओं के साथ प्रतिद्वंद्विता । जैसा कि हम देख चुके हैं, अंग्रेजों ने 1813 के बाद एकतरफा मुक्त व्यापार की नीति भारत पर लाद दी और ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं, विशेषकर सूती वस्त्रों की तुरत बड़ी भरमार हो गई । आदिम तकनीकों से बनी भारतीय वस्तुएं भाप से चलने वाली शक्तिशाली मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर बनाई गई वस्तुओं की प्रतिद्वंद्विता में नही टिक सकीं ।

भारतीय उद्योगों, विशेषकर ग्रामीण दस्तकार उद्योगों की बर्बादी, रेलवे के बनते ही काफी तेजी से हुई । रेलवे द्वारा ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं के देश के सुदूर गांवों में पहुंचने और परंपरागत उद्योगों की जड़ें खोदने में सहायता मिली । जैसा कि अमरीकी लेखक डी. एच. बुकानन ने लिखा है : "अलग-थलग रहने वाले स्वावलंबी गाँव के केवच को इस्पात की रेल ने बेध दिया, तथा उसकी प्राण शक्ति को क्षीण कर दिया ।"

सूत कातने तथा सूती कपड़ा बुनने के उद्योगों को सबसे अधिक धक्का लगा । रेशमी और ऊनी वस्त्र उद्योगों की हालत भी कोई अच्छी नहीं रही । लोहा, मिट्टी के बर्तन, शीशा, कागज, धातु, बंदूकें, जहाजरानी, तेलघानी, चमड़ा-शोधन और रंगाई उद्योगों की हालत भी बुरी हो गई ।

विदेशी वस्तुओं की भरमार के अलावा कुछ अन्य कारक भी थे जिनका जन्म ब्रिटिश जीत के कारण हुआ और जिन्होंने भारतीय उद्योगों के विनाश

Scanned with CamScanner

में योगदान दिया । ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके कर्मचारियों ने अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल के दस्तकारों पर अत्याचार किए । उन्होंने दस्तकारों को अपनी वस्तुएं बाजार कीमत से कम पर बेचने तथा अपनी सेवाओं को प्रचलित मजदूरी से कम पर देने के लिए मजबूर किया । उन्होंने अनेक दस्तकारों को अपने पुश्तैनी पेशे छोड़ने के लिए विवश किया । सामान्यतया कंपनी द्वारा निर्यात को दिए गए प्रोत्साहन से भारतीय हस्तशिल्पों को फायदा होता, मगर इस अत्याचार के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ा ।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के दौरान ब्रिटेन तथा यूरोप में भारतीय वस्तुओं के आयात पर लगाए गए उच्च आयात शुल्कों तथा अन्य प्रतिबंधों और उनके साथ ही ब्रिटेन में आधुनिक विनिर्माण उद्योगों के विकास के फलस्वरूप 1820 के बाद यूरोपीय बाजारों के दरवाजे भारतीय विनिर्माताओं के लिए वस्तुतः बंद हो गए । भारतीय शासकों और उनके राजदरबारों के जो शहरी हस्तशिल्प की वस्तुओं के मुख्य ग्राहक थे, धीरे-धीरे लुप्त हो जाने से भी इन उद्योगों को बड़ा धक्का लगा । उदाहरण के लिए, सैनिक हथियारों का उत्पादन पूरी तरह भारतीय राज्यों पर निर्भर था । अंग्रेज अपने सारे सैनिक और अन्य सरकारी सामान ब्रिटेन में खरीदते थे । इसके अलावा, शासक वर्ग के रूप में भारतीय शासकों और कुलीन पुरुषों का स्थान ब्रिटिश अधिकारियों तथा सैनिक अफसरों ने लिया जिन्होंने बिलकुल निरपवाद रूप से अपने देश के उत्पादनों को अपनाया कच्चे मालों को निर्यात करने की ब्रिटिश नीति से भी भारतीय हस्तशिल्पों को धक्का लगा क्योंकि कपास और चमड़े जैसे कच्चे मालों की कीमतें बढ़ गई । इससे हस्तशिल्प की वस्तुओं की कीमतें बढ़ गई तथा विदेशी के साथ प्रतियोगिता में ठहरने की उनकी क्षमता घट गई ।

भारतीय हस्तशिल्पों की तबाही उन शहरों की तबाही के रुप में सामने आई जो अपनी विनिर्मित वस्तुओं के लिए मशहूर थे । जो शहर युद्ध तथा लूटखसोट के विध्वंस के बाद भी टिके रहे थे, वे ब्रिटिश विजय के कारण जिंदा नहीं रह सके । ढाका, सूरत, मुर्शिदाबाद और कई अन्य घनी आबादी वाले समृद्ध औद्योगिक केंद्र जन-शून्य हो गए तथा खंडरात बन गए । उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक नगर की जनसंख्या मुश्किल से कुल जनसंख्या का 10 प्रतिशत रह गई थी । गवर्नर-जनरल विलियम बेंटिक ने 1834-35 में लिखा :

> "इस दरिद्रता के समान दरिद्रता वाणिज्य के इतिहास में शायद ही कभी रही है । बुनकरों की हड्डियां भारत के मैदानों को विरंजित कर रही है ।"

यह महाविपदा इस कारण भी बढ़ गई कि परंपरागत उद्योगों के पतन के साथ ब्रिटेन और पश्चिम यूरोप की तरह आधुनिक मशीन उद्योगों का विकास नहीं हुआ । फलस्वरूप, तबाह हस्तशिल्पी और दस्तकार वैकल्पिक रोजगार पाने में असफल रहे । उनके सामने एक ही रास्ता था : कृषि को अपनाना । इसके अलावा, ब्रिटिश शासन ने गांवों में आर्थिक जीवन के संतुलन को बिगाड़ दिया । ग्रामीण शिल्पों के धीरे-धीरे विनाश ने ग्रामीण क्षेत्र में कृषि तथा घरेलू उद्योग की एकता को तोड़ दिया और इस प्रकार, स्वावलंबी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विनाश में योगदान किया । एक ओर, करोड़ों किसानों को, जो अंशकालिक कताई तथा बुनाई द्वारा अपनी आय को पूरा करते थे, अब मुख्य रूप से खेती पर निर्भर रहना पड़ा, दूसरी ओर, करोड़ों दस्तकार अपनी परंपरागत जीविका को खो बैठे तथा खेतिहर मजदूर या छोटे काश्तकार बन गए जिनके पास छोटे-छोटे खेत थे । उनके कारण जमीन पर बोझ बढ़ा ।

इस प्रकार ब्रिटिश जीत के कारण देश में अव-औद्योगीकरण (Deindustrialization) आया और कृषि पर लोगों की निर्भरता बढ़ी । पहले के काल के लिए कोई आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं मगर जनगणना की रिपोर्टों के अनुसार केवल 1901 और 1941 के बीच कृषि पर निर्भर जनसंख्या का प्रतिशत 63.7 प्रतिशत से बढ़कर 70 प्रतिशत हो गया । कृषि पर बढ़ता हुआ यह दबाव ब्रिटिश शासन के दौरान भारत की घोर गरीबी के मुख्य कारणों में से एक था।

वस्तुतः भारत अब औद्योगिक ब्रिटेन का एक कृषि उपनिवेश हो गया । ब्रिटेन को भारत की आवश्यकता अपने उद्योगों के लिए कच्चे मालों के स्त्रोत के रूप में थी । भारत सदियों से सूती वस्तुओं का संसार में सबसे बड़ा निर्यातकर्ता था, मगर अब वह ब्रिटिश सूती उत्पादनों का आयात करने वाला तथा कपास का निर्यात करने वाला बन गया ।

Scanned with CamScanner

कार्नवालिस — एक-तिहाई बंगाल एक जंगल में बदल गया है, जिसमें केवल जानवर ही रहते हैं।

किसानों की दरिद्रता : ब्रिटिश शासन के अंतर्गत किसान भी धीरे-धीरे दरिद्र हो गए । यद्यपि वे अब अंदरूनी लड़ाइयों से मुक्त थे तथापि उनकी आर्थिक हालत खराब हो गई और वह लगातार गरीबी में धंसते गए ।

बंगाल में ब्रिटिश शासन के आरंभ में ही यथासंभव अधिकतम भूराजस्व उगाहने की क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स की नीति के कारण इतना विध्वंस हुआ कि कार्नवालिस ने भी शिकायत भरे लहजे में कहा कि एक-तिहाई बंगाल "एक जंगल में बदल गया है जिसमें केवल वनचर ही रहते हैं।" बाद में भी कोई सुधार नहीं हुआ । दोनों, स्थायी बंदोबस्त तथा अस्थायी बंदोबस्त वाले जमींदारी क्षेत्रों में किसानों की हालत अत्यंत दयनीय रही उन्हें जमींदारों की दया पर छोड़ दिया गया जिन्होंने लगानों को असहनीय सीमाओं तक बढ़ा दिया तथा उन्हें अब्बाब देने और बेगार करने के लिए मजबूर किया । जमींदारों ने किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार किए ।

रैयतवारी और महलवारी क्षेत्रों में किसानों की हालत कोई बेहतर नहीं थी । वहां सरकार ने जमींदारों का स्थान लिया तथा अत्यधिक भूराजस्व निर्धारित किया । शुरू में भूराजस्व उत्पादन का एक-तिहाई से लेकर आधा तक होता था । भारी मात्रा में भूराजस्व का निर्धारण उन्नीसवीं सदी में दरिद्रता की वृद्धि तथा कृषि की अवनति के मुख्य कारणों में से एक था । अनेक समसामयिक लेखकों और अधिकारियों ने इस तथ्य का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए, बिशप हेबर ने 1826 में लिखा :

> "मेरा ख्याल है कि न तो देशी और न ही यूरोपीय कृषक कराधान की वर्तमान दर पर समृद्ध बन सकता है। जमीन की आधी सकल पैदावार सरकार ले लेती है . . . . हिंदुस्तान (उत्तर भारत) में मैंने शाही अफसरों में यह आम भावना पाई . . . . कि देशी राज्यों की प्रजा की तुलना में कंपनी के प्रांतों के किसान, कुल मिलाकर बदतर, गरीब और पस्तहिम्मत है, और यहां मद्रास में जहां जमीन आम तौर से कम उपजाऊ है, विषमता और स्पष्ट है । तथ्य यह है कि कोई भी देशी राजा हमारे जितना लगान नहीं मांगता ।".

यद्यपि भूराजस्व की रकम वर्ष प्रति वर्ष बढ़ती गई (वह 1857-58 में 15.3 करोड़ रूपए थी जो बढ़कर 1936-37 में 35.8 करोड़ रूपए हो गई), तथापि कीमतों और उत्पादन के बढ़ने के साथ-साथ कुल उत्पादन के अनुपात के रूप में खास तौर से बीसवीं शताब्दी में भूराजस्व की प्रवृति घटने की थी । भूराजस्व में कोई सानुपातिक वृद्धि नहीं की गई क्योंकि अतिशय राजस्व वसूल करने के विनाशकारी परिणाम स्पष्ट हो गए । मगर अब तक कृषि पर जनसंख्या का दबाव इतना बढ़ गया था। कि बाद के वर्षों में किसानों का अपेक्षाकृत कम भूराजस्व भी कंपनी के प्रारंभिक वर्षों के उच्च भूराजस्व के समान ही भारी सिद्ध हुआ । बहरहाल बीसवीं शताब्दी में कृषि अर्थव्यवस्था नष्ट हो चुकी थी तथा भूस्वामियों, सूदखोरों और सौदागरों का सुदूर गांवों तक में प्रवेश हो चुका था ।

उच्च भूराजस्व निर्धारण इसलिए भी विनाशकारी साबित हुआ कि उसके बदले किसानों को कोई आर्थिक प्रतिफल नहीं मिला । कृषि-सुधार पर सरकार ने बहुत कम खर्च किया । उसने अपनी लगभग सारी आय ब्रिटिश भारत के प्रशासन की आवश्यकताओं को पूरा करने, इंग्लैंड को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नजराना भेजने, तथा ब्रिटिश व्यापार और उद्योग के हितों को साधने में लगा दी । यहां तक कि कानून और व्यवस्था बनाए रखने से किसान की अपेक्षा सौदागर तथा महाजन को फायदा पहुंचा।

अत्याधिक भूराजस्व की रकम के नुकसानदेह परिणामों को उसको वसूल करने के कठोर तरीके ने और भी भयंकर बना दिया । भूराजस्व निर्धारित तारीखों पर तत्परता के साथ भुगतान करना पड़ता था । भले ही पैदावार सामान्य से कम रही हो या बिल्कुल ही न हुई हो । खराब फसल वाले वर्षों में किसानों के लिए भूराजस्व की अदायगी बड़ी कठिन थी, भले ही वह अच्छी फसल के सालों में भूराजस्व आसानी से दे पाए हों ।

जब भी किसान भूराजस्व अदा करने में असफल रहे, तब सरकार ने राजस्व की बकाया रकम वसूल करने के लिए उसकी जमीन को नीलाम कर दिया । मगर अधिकतर स्थितियों में किसान ने अपनी जमीन का कुछ हिस्सा बेचकर भूराजस्व अदा किया । नीलाम की स्थिति में उसे अपनी जमीन से हाथ धोना पड़ा।

बहुधा राजस्व भुगतान करने में असमर्थता के कारण किसान को महाजन से ब्याज की ऊंची दरों

(1) Punjab Land Alienation Act 1900
(2) आन्ध्र प्रान्तीय रैयत्वारी कानून — 1928
(3) पकास्त — किसान

Scanned with CamScanner

पर कर्ज लेना पड़ता था । जमीन से सदा के लिए हाथ धोने के बदले किसान अपनी जमीन किसी महाजन या अपने पड़ोसी धनी किसान के पास गिरवी कर कर्ज लेना बेहतर समझते थे । जब भी उनका खर्च उनकी आय से नहीं चल पाता था उन्हें महाजन के पास जाना पड़ता था । मगर एक बार कर्ज में फंसने के बाद उनके लिए उससे निकल पाना मुश्किल था । महाजन ऊंची दरों पर ब्याज लेता था और गलत हिसाब-किताब, जाली दस्तखतों और कर्जदार को कर्ज की वास्तविक रकमों से अधिक पर दस्तखत करने के लिए मजबूर करने जैसी धूर्तता-पूर्ण कार्रवाइयों द्वारा किसानों को तब तक कर्ज में फंसाता जाता था जब तक वह अपनी जमीन से हाथ नहीं धो बैठते ।

महाजन को नई कानून प्रणाली तथा नई कानून राजस्व नीति से बहुत मदद मिली । अंग्रेजी राज के पहले महाजन ग्राम समुदाय के अधीन होता था । वह ऐसा आचरण नहीं कर सकता था जिसे गांव के बाकी लोग बिल्कुल ही पसंद न करें । उदाहरण के लिए, वह बहुत अधिक दरों पर ब्याज नहीं ले सकता था । वस्तुतः ब्याज की दरों का निर्धारण चलन तथा जनमत द्वारा होता था । इसके अलावा, वह कर्जदार की जमीन पर कब्जा नहीं कर सकता था । अधिक से अधिक वह कर्जदार की व्यक्तिगत चल संपत्ति जैसे गहनों या खेतों में खड़ी फसलों के कुछ हिस्से ले सकता था । जमीन को हस्तांतरण योग्य बनाकर ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था ने महाजन या धनी किसान को जमीन हथियाने में समर्थ बना दिया । यहां तक कि अंग्रेजों द्वारा अपनी कानून प्रणाली और पुलिस के फलस्वरूप स्थापित शांति और सुरक्षा के फायदे महाजन को मिले जिसके हाथों में कानून ने अपार शक्ति दे दी थी; उसने पैसे की ताकत का इस्तेमाल मुकदमे की खर्चीली प्रक्रिया को अपने पक्ष में अपने हित को साधने के लिए कर लिया । इसके अतिरिक्त, साक्षर और चालाक महाजन ने आसानी से किसान की अज्ञानता तथा निरक्षरता का इस्तेमाल कानून की जटिल प्रक्रियाओं को तोड़ मरोड़ कर अनुकूल न्यायिक निर्णय प्राप्त करने के लिए किया। धीरे-धीरे रैयतवारी और महलवारी क्षेत्रों के किसान कर्ज में डूबते ही चले गए और अधिकाधिक जमीन महाजनों, सौदागरों, धनी किसानों और अन्य धनी वर्गों के हाथों में चली गई । यही प्रक्रिया जमींदारी क्षेत्रों में भी हुई जहां किसान अपने काश्तकारी अधिकार खो बैठे और उन्हें जमीन से बेदखल कर दिया गया या वे महाजन के बटाईदार बन गए ।

किसानों के हाथों से जमीन के हस्तांतरण की प्रक्रिया अभाव तथा अकाल के कालों में तेज हो गई । भारतीय किसान के पास संकट के समय के लिए शायद ही कोई बचत होती थी और जब भी फसल खराब हो जाती थी तब उसे महाजन का आश्रय लेना पड़ता था । उसे महाजन का सहारा न केवल भूराजस्व अदा करने बल्कि अपने तथा अपने परिवार के भोजन की व्यवस्था करने के लिए भी लेना पड़ता था ।

उन्नीसवीं सदी के अंत तक महाजन ग्रामीण क्षेत्र का मुख्य अभिशाप तथा ग्रामीण जनता की बढ़ती हुई दरिद्रता का एक महत्वपूर्ण कारण बन गया था । 1911 में कुल ग्रामीण ऋण तीन अरब रूपए आंका गया था । 1937 तक वह 18 अरब रूपए पर पहुंच गया । पूरी प्रक्रिया एक दुश्चक्र बन गई थी । कराधान तथा बढ़ती हुई गरीबी के बोझ ने किसानों को कर्ज में फंसा दिया था । कर्ज के परिणामस्वरूप भी उनकी गरीबी बढ़ी । वस्तुतः किसान बहुधा यह नहीं समझ सके कि महाजन साम्राज्यवादी शोषण तंत्र में एक अवश्यंभावी दांता है और उन्होंने अपना गुस्सा उसी पर उतारा क्योंकि वही उन्हें अपनी दरिद्रता का स्पष्ट कारण लगा । उदाहरण के लिए, 1857 के विद्रोह के दौरान जहां भी किसानों ने विद्रोह किया, वहां उनके हमले का पहला निशाना था महाजन और उसकी बहियां । किसानों की ये कार्रवाइयां आम बात हो गई ।

कृषि के बढ़ते हुए वाणिज्यीकरण ने भी महाजन सह-सौदागार को किसान का शोषण करने में मदद दी । गरीब किसान को फसल तैयार होते ही जो भी कीमत मिले उस पर अपनी पैदावार बेचने के लिए मजबूर कर दिया जाता था क्योंकि उसे सरकार, जमींदार तथा महाजन की मांगों को समय पर पूरा करना पड़ता था । इस कारण वह अनाज के व्यापारी की दया पर निर्भर हो जाता था । व्यापारी अपनी शर्तों पर अनाज खरीदता था । व्यापारी बाजार कीमत से कम पर अनाज खरीद लेता था । इस प्रकार कृषि की पैदावारों के बढ़ते हुए व्यापार का अधिक लाभ व्यापारी को मिला, जो बहुधा गांव का महाजन भी होता था ।

जमीन हाथों से निकलने तथा अव-औद्योगीकरण और आधुनिक उद्योग के अभाव के कारण जमीन पर बढ़ते हुए बोझ से भूमिहीन किसानों और तबाह दस्तकारों तथा हस्तशिल्पियों को काफी ऊंचे लगान

(1) नीलाम करने की नीति —— वारेन हेस्टिंग्स

पर महाजनों तथा जमींदारों के रैयत या कम से कम मजदूरी पर खेतिहार मजदूर बनने के लिए मजबूर किया । इस प्रकार किसान वर्ग को सरकार, जमींदार या भूस्वामी और महाजन के तिहरे बोझ से कुचल दिया गया । इन तीनों द्वारा अपने हिस्से ले लेने के बाद इतना नहीं बचता था कि खेतिहर तथा उसके परिवार का निर्वाह हो सके । यह हिसाब लगाया गया कि 1950–51 में भूलगान तथा महाजन का ब्याज 14 अरब रूपए था यानी उस साल के कुल कृषि उत्पादन का लगभग एक–तिहाई । परिणामस्वरुप किसान वर्ग की गरीबी बढ़ती गई । साथ ही अकालों की बारंबारता तथा भयंकरता भी बढ़ गई । जब भी सूखे या बाढ़ के कारण फसलें खराब हो गईं तथा अभाव की स्थिति आयी तब लाखों की संख्या में लोग मरे ।

पुराने जमींदारों की तबाही तथा नई व्यवस्था का उदय

ब्रिटिश शासन के पिछले कुछ दशकों में बंगाल तथा मद्रास के पुराने जमींदार तबाह हो गए ऐसा खासकर सबसे ऊंची बोली लगाने वाले को राजस्व वसूली के अधिकार नीलाम करने की वारेन हेस्टिंग्स की नीति के कारण हुआ । आरंभ में 1793 के स्थायी बंदोबस्त का ऐसा ही प्रभाव हुआ । भूराजस्व का भारी बोझ (सरकार कुल लगान का 10/11 ले लेती थी) और वसूली संबंधी सख्त कानून ने, जिसके तहत राजस्व की अदायगी में विलंब होने पर जमींदारी संपत्तियां बड़ी कठोरता से नीलाम कर दी गईं; शुरु के कुछ वर्षों के दौरान बड़ी ही विध्वंसकारी भूमिका अदा की । बंगाल के अनेक बड़े जमींदार बिल्कुल तबाह हो गए तथा अपने जमींदारी अधिकारों को बेचने पर मजबूर किए गए । 1815 तक बंगाल की लगभग आधी भूसंपत्ति पुराने जमींदारों के हाथों से निकलकर सौदागरों तथा अन्य धनी वर्गों के पास चली जा चुकी थी । पुराने जमींदार गांवों में रहते आए थे और रैयतों के प्रति कुछ नरमी दिखाने की उनकी परंपरा रही थी । सौदागर तथा पैसे वाले अन्य वर्ग आमतौर से शहरों में रहते थे और कठिन परिस्थितियों का बिना ख्याल किए वे रैयत से पाई–पाई निस्ठुरता से वसूल करते थे । वे बिल्कुल बेईमान थे और रैयतों के प्रति उनके मन में कोई सहानुभूति नहीं थी । वे किसानों से बहुत अधिक ऐंठते तथा जब भी चाहते उन्हें बेदखल कर देते थे।

उत्तर मद्रास में स्थायी बंदोबस्त और उत्तर प्रदेश में अस्थायी जमींदारी बंदोबस्त भी स्थानीय जमींदार के लिए समान रुप से कठोर थे ।

मगर जमींदारों की दशा में जल्द ही तेजी से सुधार हुआ । जमींदार भूराजस्व समय पर अदा कर सकें, इसके लिए अधिकारियों ने रैयतों पर उनके अधिकार बढ़ा दिए । फलस्वरुप रैयतों के परंपरागत अधिकार समाप्त हो गए । अब जमींदारों ने लगान को अधिकतम सीमा तक बढ़ाने के लिए कमर कस ली । फलस्वरुप वे जल्द ही समृद्ध हो गए ।

रैयतवारी क्षेत्रों में भी जमींदार रैयत संबंधों की प्रणाली धीरे–धीरे फेल हो गई । जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, अधिकाधिक जमीन महाजनों, सौदागरों और धनी किसानों के हाथ में चली गई, जो रैयतों के द्वारा खेती करवाते थे । भारतीय धनी वर्गों द्वारा जमीन खरीदने और जमींदार बनने का एक कारण यह भी था कि उद्योग में पूंजी के निवेश की कोई खास गुंजाइश नहीं थी । बटाईदारी एक अन्य प्रक्रिया थी, जिसके जरिए इस जमींदारी प्रथा का प्रसार हुआ । अनेक खुद मालिक किसानों तथा काश्तकारी अधिकार प्राप्त रैयतों ने जिनका जमीन पर स्थायी अधिकार था, स्वयं खेती करने के बदले जमीन के लिए उतावले रैयतों को अत्याधिक लगान पर पट्टे पर जमीन देना अधिक सुविधजनक पाया । कालक्रम से जमींदारी प्रथा ने सिर्फ जमींदारी क्षेत्रों में बल्कि रैयतवारी क्षेत्रों में भी कृषि की मुख्य विशेषता बन गई ।

जमींदारी प्रथा के प्रसार की एक उल्लेखनीय विशेषता थी बिचौलियों का उदय । चूंकि खेतिहर रैयतों को आम तौर से कोई सुरक्षा नहीं थी और जमीन पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव के कारण रैयतों में जमीन के लिए परस्पर प्रतियोगिता थी, इसलिए जमीन का लगान बढ़ता गया । जमींदारी और नए भूस्वामियों ने लगान वसूल करने के अपने अधिकार को लाभदायक शर्तों पर अन्य इच्छुक लोगो को दे दिया । मगर लगान बढ़ने के साथ–साथ भाड़े पर जमीन लेने वालों ने जमीन संबंधी अपने अधिकारों को भी किराए पर लगा दिया । अतः इस प्रक्रिया की एक श्रृंखला बन गई जिससे वास्तविक किसान तथा सरकार के बीच लगान पाने वाले उनके बिचौलिए आ गए । बंगाल में कुछ स्थितियों में उनकी संख्या पचास तक पहुंच गई । असहाय खेतिहर रैयतों की दशा, जिन्हें ही अंततोगत्वा उच्च जमींदारों

Scanned with CamScanner

(1) 1901 & 1939 के बीच कुल कृषि उत्पादन 14% कम हो गया।

के झुंड का असहनीय बोझ उठाना पड़ता था, इनती खराब थी कि उनकी कल्पना भी नहीं की सकती । उनमें से अनेक की हालत तो गुलामों जैसी थी ।

जमींदारी तथा भूस्वामियों के उदय और फलने-फूलने का एक अत्यंत नुकसानदेह परिणाम था स्वतंत्रता के लिए भारतीय संघर्ष के दौरान उनकी राजनीतिक भूमिका । संरक्षित राज्यों के राजाओं के साथ वे विदेशी शासकों के मुख्य राजनीतिक समर्थक बन गए तथा उन्होंने उदीयमान राष्ट्रीय आंदोलन का विरोध किया । यह महसूस कर कि उनका अस्तित्व ब्रिटिश शासन के कारण है, उन्होंने ब्रिटिश सरकार को सदा बनाए रखने के लिए जी तोड़ कोशिश की।

कृषि में ठहराव और उसकी अवनति

कृषि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव, अत्यधिक भूराजस्व निर्धारण, जमींदारी प्रथा के पनपने, बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता और किसानों की बढ़ती हुई दरिद्रता के फलस्वरुप भारतीय कृषि गतिहीन होने लगी और यहां तक कि उसका अपकर्ष भी होने लगा । परिणामस्वरुप प्रति एकड़ पैदावार बहुत ही कम होने लगी । 1901 तथा 1939 के बीच कुल कृषि उत्पादन 14 प्रतिशत कम हो गया ।

कृषि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव तथा बिचौलियों की बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण जमीन न सिर्फ छोट-छोटे टुकड़ों में बंट गई बल्कि उसका अपखंडन भी हो गया । जमीन इतने छोट-छोटे टुकड़ों में बंट गई कि उनमें से अधिकांश अपने जोतने वालों का भारण-पोषण भी नहीं कर सकते थे। बहुसंख्यक किसानों की अति दरिद्रता के कारण उनके पास इतने संसाधन नहीं होते थे जिनसे वे अच्छे मवेशी और बीजों, अधिक खाद तथा उर्वरकों और उत्पादन की उन्नत तकनीकों का इस्तेमाल कर कृषि में सुधार लाते । सरकार और जमींदार दोनों द्वारा चूसे जाने वाले किसान को कृषि में सुधार लाने के लिए कोई प्रेरणा नहीं होती थी । आखिरकार जिस जमीन पर वह खेती करता था वह विरले ही उसकी अपनी संपत्ति होती थी और कृषि में सुधारों के कारण जो भी फायदा होता उसका अधिकांश दूरस्थ जमींदारों और महाजनों का गिरोह ले लेता । जमीन के उपविभाजन तथा अपखंडन ने भी सुधारों को मुश्किल बना दिया था ।

इंग्लैंड और अन्य यूरोपीय देशों में धनी जमींदारों ने बहुधा जमीन में पूंजी लगाई जिससे उसकी उत्पादकता बढ़ सके और बढ़ी हुई आय में उनको हिस्सा मिल सके । मगर भारत में दूरस्थ जमींदार ने, वे नए रहे हों या पुराने कोई उपयोगी कार्य नहीं किया । वे केवल लगान प्राप्तकर्ता ही रहे । बहुधा जमीन में उनकी कोई जड़े नहीं होती थीं और उन्होंने लगान वसूल करने के सिवाए उसमें कोई व्यक्तिगत दिलचस्पी भी नहीं ली । इसलिए, जमीन में उत्पादक निवेश करने की अपेक्षा अपने रैयतों को और भी चूसकर अपनी आय को बढ़ाना उन्होंने न सिर्फ संभव माना बल्कि श्रेयस्कर भी समझा ।

सरकार कृषि के सुधार और आधुनिकीकरण में सहायता कर सकती थी। मगर सरकार ने अपने ऊपर इस प्रकार की कोई भी जिम्मेदारी स्वीकार करने से इंकार कर दिया । ब्रिटिश भारत की वित्तीय व्यवस्था की एक विशेषता यह थी कि कराधान का मुख्य बोझ किसान के कंधों पर पड़ा, सरकार ने उस पर उसका एक छोटा हिस्सा ही खर्च किया । किसान और कृषि की अवहेलना का एक उदाहरण था, लोक कार्यों और कृषि सुधारों की उपेक्षा । भारत सरकार ने 1905 तक रेलवे पर 3 अरब 60 करोड़ रुपए से अधिक खर्च किए मगर उसी दौरान सिंचाई पर उसने 50 करोड़ रुपए से कम खर्च किए । रेलवे की मांग ब्रिटिश व्यवसायी कर रहे थे जबकि सिंचाई से करोड़ों भारतीय किसानों का भला होता । तो भी सिंचाई ही एक ऐसा क्षेत्र था जिसमें सरकार ने आगे की ओर कुछ कदम बढ़ाए ।

ऐसे समय जब सारे संसार में कृषि को आधुनिक बनाया जा रहा था तथा कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए जा रहे थे, भारतीय कृषि टेक्नोलोजी की दृष्टि से निश्चल बनी हुई थी, उसमें शायद ही किसी आधुनिक मशीन का इस्तेमाल हो रहा था । सबसे खराब बात यह थी कि साधारण उपकरण भी सदियों पुराने थे । उदाहरण के लिए, 1951 में केवल 9,30,000 लोहे के हल इस्तेमाल किए जा रहे थे जबकि काठ के हलों की संख्या 3 करोड़ 18 लाख थी । अजैव उर्वरकों का प्रयोग बिल्कुल ही नहीं होता था जबकि अधिकांश पशु खाद (उदाहरण के लिए गोबर, मल और मवेशियों की हड्डियां) बरबाद हो जाती थीं । 1922-23 में कुल फसल वाली जमीन के केवल 1.9 प्रतिशत में ही उन्नत बीज का प्रयोग होता था । 1938-39 तक यह प्रतिशत

Scanned with CamScanner

(1) पहली कपड़ा मिल ——— 1853 — कावसजी नाना भाई ने
(2) पहली जूट मिल ——— 1855 — रिशरा [बंगाल]
(3) इस्पात उत्पादन शुरू ——— 1913

बढ़कर केवल 11 प्रतिशत पर ही पहुंच पाया था । इतना ही नहीं, कृषि शिक्षा पूर्णतया उपेक्षित थी । 1939 में सारे भारत में केवल छः कृषि कालेज थे जिनमें सिर्फ 1,306 विद्यार्थी पढ़ते थे । बंगाल, बिहार, उड़ीसा और सिंध में एक भी कृषि कालेज नहीं था । स्वाध्याय के जरिए सुधार लाने में भी किसान समर्थ नहीं थे । ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा या यहां तक कि साक्षरता तक का कुछ प्रसार नहीं हुआ था ।

आधुनिक उद्योगों का विकास

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध की एक महत्वपूर्ण घटना मशीनों के बड़े पैमाने पर आधारित उद्योगों की स्थापना थी । भारत में मशीन युग का आरंभ तब हुआ जब उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में सूती कपड़ा, जूट और कोयला खान उद्योगों की स्थापना हुई । पहली कपड़ा मिल 1853 में कावसजी नाना भाई ने बंबई में शुरू की, और पहली जूट मिल 1855 में रिशरा (बंगाल) में स्थापित की गई । इन उद्योगों का विस्तार धीरे-धीरे मगर लगातार हुआ । 1879 में भारत में 56 सूती कपड़ा मिलें थीं जिनमें लगभग 43,000 लोग काम करते थे । 1882 में 20 जूट मिलें थीं, जो अधिकतर बंगाल में थीं और उनमें लगभग 20,000 लोग काम करते थे । 1905 तक भारत में 206 सूती मिलें हो गई थीं जिनमें करीब 1,96,000 लोग काम करते थे । 1901 में 36 से भी अधिक मिलें थीं जिनमें करीब 1,15,000 लोग काम पर लगे थे । कोयला खान उद्योगों में 1906 में करीब एक लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ था। अन्य यांत्रिक उद्योग जो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं सदी के शुरु में विकसित हुए उनमें कपास की ओटाई तथा दबाने, चावल आटे तथा इमारती लकड़ी की मिलें, चर्म शोधनालय, ऊनी कपड़े के कारखाने, कागज और चीनी की मिलें, लोहा और इस्पात के कारखाने, तथा नमक, अभ्रक और शोरे जैसे खनिज उद्योग थे । बीसवीं सदी के चौथे दशक में सीमेंट, कागज, दियासलाई, चीनी और शीशा उद्योग विकसित हुए । मगर इन सब उद्योगों का अवरुद्ध विकास हुआ ।

अधिकतर आधुनिक भारतीय उद्योगों पर ब्रिटिश पूंजी का स्वामित्व या नियंत्रण था । विदेशी पूंजीपति भारतीय उद्योग में ऊंचे मुनाफों की संभावनाओं के कारण उसकी ओर आकर्षित हुए । श्रम अत्यंत सस्ता था; कच्चे माल तुरंत और सस्ती दरों पर उपलब्ध थे; और अनेक वस्तुओं के लिए भारत और उसके पड़ोसियों ने तैयार बाजार उपलब्ध कराया । चाय, जूट और मैंगनीज जैसे अनेक भारतीय उत्पादनों के लिए सारे संसार में बना-बनाया बाजार था । दूसरी ओर, अपने देश में विदेशी पूंजीपतियों को लाभप्रद निवेश के अवसर कम मिल रहे थे । उस समय, औपनिवेशिक सरकार और उसके अधिकारी सभी प्रकार की सहायता तथा रियायतें देने को तैयार थे ।

विदेशी पूंजी ने अनेक उद्योगों में भारतीय पूंजी को दबा दिया । केवल सूती कपड़ा उद्योग में आरंभ में भारतीयों का बहुत बड़ा हिस्सा था, और बीसवीं सदी के चौथे दशक में चीनी उद्योग का विकास, भारतीयों ने किया । भारतीय पूंजीपतियों को आरंभ से ही ब्रिटिश मैनेजिंग एजेंसियों और ब्रिटिश बैंकों की ताकत के खिलाफ संघर्ष करना पड़ा । किसी भी उद्यम के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए भारतीय व्यवसायियों को उस क्षेत्र में प्रबल ब्रिटिश मैनेजिंग एजेंसियों के सामने झुकना पड़ता था । अनेक स्थितियों में भारतीयों को कंपनियों पर भी विदेशी स्वामित्व और नियंत्रण वाली मैनेजिंग एजेंसियों का दबदबा होता था । भारतीयों को बैंकों से ऋण मिलने में भी कठिनाई होती थी । अधिकतर बैंकों पर ब्रिटिश अर्थपतियों का प्रभाव था । अगर उनको कर्ज मिलते भी थे तो उन्हें ऊंची दरों पर ब्याज देने पड़ते थे जबकि विदेशी काफी आसान शर्तों पर कर्ज ले सकते थे । निःसंदेह, भारतीयों ने धीरे-धीरे अपने बैंक और बीमा कंपनियां विकसित करनी शुरू कर दीं । 1914 में भारत की कुल बैंक जमा के 70 प्रतिशत से भी अधिक पर विदेशी बैंकों का अधिकार था; 1937 तक उनका हिस्सा बढ़कर 57 प्रतिशत हो गया ।

भारतीय आर्थिक जीवन में अपना बोलबाला बनाए रखने के लिए भारत स्थित ब्रिटिश उद्यम ने मशीन और उपकरण देने वाले ब्रिटिश संभरणकर्ताओं, जहाजरानी, बीमा कंपनियों, विपणन संगठनों, सरकारी अधिकारियों तथा राजनीतिक नेताओं से भी घनिष्ठ संबंध बनाए रखे । इसके अलावा, सरकार ने भारतीय पूंजी के विपरीत विदेशी पूंजी का पक्ष लेने की नीति जानबूझ कर अपनाई ।

भारत सरकार की रेलवे नीति ने भी भारतीय उद्यम के प्रति भेदभाव किया; रेलवे भाड़े की दरों ने देशी उत्पादनों के मत्थे विदेशों से आई वस्तुओं को

Scanned with CamScanner

(1) नील दर्पण 1860 दीनबंधु मित्र

उन्नीसवीं सदी में कलकत्ता बंदरगाह का एक दृश्य। इंग्लैंड से ब्रिटिश निर्यातों को जहाज से यहाँ लाया जाता था

प्रोत्साहन दिया। आयातित वस्तुओं की अपेक्षा भारतीय वस्तुओं का वितरण कठिन और खर्चीला था।

भारतीयों द्वारा उद्योग स्थापित करने में एक अन्य गंभीर कठिनाई यह थी कि देश में भारी या पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों का लगभग पूरा अभाव था। इन उद्योगों के बिना अन्य उद्योगों का तेज और स्वतंत्र विकास नहीं हो सकता था। लोहा और इस्पात उत्पन्न करने या मशीन बनाने के लिए भारत के पास बड़े संयंत्र नहीं थे। इंजीनियरिंग उद्योगों के नाम पर कुछ छोटी-छोटी मरम्मती वाले वर्कशाप थे और धातु उद्योगों के नाम पर थोड़े से लोहा और पीतल की फाउंड्रियां थीं। भारत में इस्पात का उत्पादन सबसे पहले 1913 में हुआ। इस प्रकार भारत में इस्पात, धातुकर्म, मशीन, रसायन और तेल जैसे बुनियादी उद्योगों का अभाव था। विद्युत शक्ति के विकास में भी भारत पिछड़ा हुआ था।

मशीनों पर आधारित उद्योगों के अलावा, उन्नीसवीं सदी में नील, चाय और काफी जैसे बागान उद्योगों का भी विकास हुआ। उन पर पूरी तरह से यूरोपीय स्वामित्व था। नील का इस्तेमाल सूती कपड़ा उद्योग में रंगाई के लिए होता था। नील से रंग बनाने का उद्योग भारत मे अठारहवीं सदी के अंत में शुरु किया गया। वह बंगाल और बिहार में फला-फूला। किसानों पर अत्याचार करने के कारण निलहे (Indigo planters) बदनाम हो गए। उन्होंने नील की खेती करने के लिए किसानों को मजबूर किया। इस उत्पीड़न का सजीव चित्रण प्रसिद्ध बंगला लेखक दीनबंधु मित्र ने अपने नाटक नील दर्पण में 1860 में किया। एक संश्लिष्ट रंग के आविष्कार से नील उद्योग को बड़ा धक्का लगा और धीरे-धीरे ह्रास हो गया। चाय उद्योग का

नील का एक बागान

Scanned with CamScanner

(1) पहला अकाल पश्चिमी उत्तर प्रदेश ——— 1860–61 – 2 लाख मरे
(2) अकाल 1865-66 — उड़ीसा, बंगाल, बिहार, मद्रास – 20 लाख मरे

विकास 1850 के बाद असम, बंगाल, दक्षिण भारत तथा हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियों में हुआ। चाय उद्योग पर विदेशी स्वामित्व होने के कारण सरकार ने लगान मुक्त जमीन तथा अन्य सुविधाएं देकर उनकी सहायता की । कालक्रम से चाय का उपयोग सारे भारत में होने लगा । चाय निर्यात की एक महत्वपूर्ण वस्तु बन गई । इस दौरान काफी बागानों का विकास दक्षिण भारत में हुआ ।

बागान तथा विदेशी स्वामित्व वाले अन्य उद्योगों से भारतीय जनता को कोई खास फायदा नहीं हुआ। उनके वेतन और मुनाफे देश से बाहर जाते थे । उन्होंने अपने वेतन का एक बड़ा भाग उच्च वेतनभोगी विदेशियों पर लगाया । उन्होंने अपने अधिकांश उपकरण विदेशों में खरीदे । उनके अधिकतर तकनीकी कर्मचारी विदेशी थे । उनके अधिकांश उत्पादन विदेशी बाज़ारों में बिकते थे और बिक्री से प्राप्त विदेशी मुद्रा का इस्तेमाल ब्रिटेन करता था । इन उद्योगों से भारतीयों को एक ही फायदा हुआ कि अकुशल लोगों के लिए रोजगार के अवसर पैदा हुए । मगर इन उद्योगों में अधिकांश मजदूरों को बहुत कम मजदूरी मिलती थी तथा उन्हें अत्यन्त कठिन स्थितियों में लंबे समय तक काम करना पड़ता था। इसके अलावा, बागानों में लगभग गुलामी की स्थिति थी ।

कुल मिलाकर भारत में औद्योगिक प्रगति बड़ी धीमी और दुःखदायी रही । औद्योगिक प्रगति उन्नीसवीं सदी में सूती कपड़ा और जूट उद्योगों तथा चाय बागानों तथा बीसवीं सदी के चौथे दशक में चीनी और सीमेंट तक ही सीमित रही । 1946 में भी, कारखानों में काम करने वाले 40 प्रतिशत मजदूर सूती कपड़ा और जूट उद्योगों में लगे हुए थे। उत्पादन और रोगगार दोनों दृष्टियों से भारत का आधुनिक औद्योगिक विकास अन्य देशों के आर्थिक विकास या भारत की आवश्यकताओं की तुलना में नगण्य था । वस्तुतः उसने देशी हस्तशिल्पों के ह्रास को भी पूरा नहीं किया । उसके गरीबी और जमीन पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव की समस्याओं पर कोई खास असर नहीं पड़ा । भारत के औद्योगीकरण की नगण्यता इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि 1951 में 35 करोड़ 70 लाख की कुल जनसंख्या में से केवल 23 लाख लोग आधुनिक औद्योगिक उद्यमों में लगे थे । इसके अलावा, 1858 के बाद शहरी और ग्रामीण हस्तशिल्पों का ह्रास अनवरत जारी रहा । भारतीय योजना आयोग ने हिसाब लगाया है कि प्रोसेसिंग तथा विनिर्माण में लगे लोगों की संख्या 1901 में 1 करोड़ 3 लाख थी जो बढ़कर 1951 में 88 लाख हो गई यद्यपि इस दौरान जनसंख्या में लगभग 40 प्रतिशत वृद्धि हुई । सरकार ने पुराने देशी उद्योगों के संरक्षण, पुनर्स्थापना, पुनःसंगटन तथा आधुनिक उद्योग आधुनिकीकरण के लिए कोई प्रयास नहीं किया ।

इसके अलावा, आधुनिक उद्योग भी सरकारी सहायता के बिना और बहुधा ब्रिटिश नीति के विरूद्ध विकसित हुए । ब्रिटिश विनिर्माता भारतीय सूती कपड़ा उद्योग तथा अन्य उद्योग को अपना प्रतिद्वंद्वी समझते थे और उन्होंने सरकार पर दबाव डाला कि वह भारत में औद्योगिक विकास को न सिर्फ प्रोत्साहित करे बल्कि उसे सक्रिय रुप से अनुत्साहित करे । इस प्रकार ब्रिटिश नीति ने भारतीय उद्योगों के विकास को कृत्रिम रुप से प्रतिबंधित तथा धीमा किया ।

इतना ही नहीं, भारतीय उद्योगों को अपने शैशव काल में संरक्षण की आवश्यकता थी । उनका विकास उस समय हुआ जब ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमरीका ने शक्तिशाली उद्योग स्थापित कर लिए थे और इसलिए, भारतीय उद्योग उनकी प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक सकते थे । वस्तुतः ब्रिटेन सहित सभी अन्य देशों ने विदेशी विनिर्मित वस्तुओं के आयात पर भारी आयात शुल्क लगाकर अपने शिशु उद्योगों को संरक्षण दिया था । मगर भारत स्वतंत्र देश नहीं था । उसकी नीतियों ब्रिटेन निर्धारित करता था । नीति–निर्धारण ब्रिटिश उद्योगपतियों के हितों में किया जाता था । ब्रिटिश उद्योगपतियों ने अपने उपनिवेश पर मुक्त व्यापार की नीति लाद दी थी । इसी कारण भारत सरकार ने, जिस प्रकार यूरोप और जापान की सरकारें अपने शिशु–उद्योगों को सहायता दे रही थी उस प्रकार नव–स्थापित भारतीय उद्योगों को वित्तीय तथा अन्य सहायता देने से इंकार कर दिया । उसने तकनीकी शिक्षा के लिए पर्याप्त इंतजाम नहीं किए । 1951 तक तकनीकी शिक्षा बहुत पिछड़ी रही । इससे देश का औद्योगिक पिछड़ापन और भी बढ़ गया । 1939 में देश भर में केवल 7 इंजीनियरिंग कालेज थे जिनमें 2,217 विद्यार्थी पढ़ते थे । अनेक भारतीय परियोजनाएं उदाहरण के लिए, जहाजों, रेल इंजनों, मोटर गाड़ियों, और हवाई जहाजों के निर्माण से संबंधित परियोजनाएं इसलिए नहीं शुरु की जा सकीं कि सरकार ने कोई सहायता देने से इंकार कर दिया ।

Scanned with CamScanner

अंततोगत्वा बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशकों में, उदीयमान राष्ट्रीय आंदोलन और भारतीयों पूंजीपति वर्ग के दबावों के कारण भारत सरकार को मजबूर होकर भारतीय उद्योगों को तटकर संबंधी कुछ संरक्षण देना पड़ा । मगर फिर यहां भी सरकार ने भारतीयों के उद्योगों के प्रति सौतेली मां जैसा व्यवहार किया । भारतीयों के उद्योगों जैसे सीमेंट लोहा और इस्पात और शीशा को या तो सरंक्षण ही नहीं दिया गया या दिया गया तो वह बहुत अपर्याप्त था । इसके अलावा, ब्रिटिश आयातित वस्तुओं को 'साम्राज्यी वरीयता' (Imperial Preferences) की प्रणाली के अंतर्गत भारतीयों के जोरदार विरोध के बावजूद, विशेष रियायतें दी गई ।

भारतीय औद्योगिक विकास की एक खास बात यह थी कि वह क्षेत्रीय दृष्टि से अत्यंत असंतुलित था। भारतीय उद्योग देश के कुछ क्षेत्रों और शहरों में ही संकेंद्रित थे । देश के अधिकतर भाग बिल्कुल अर्ध-विकसित थे । इस असमान क्षेत्रीय आर्थिक विकास के कारण न केवल आय के वितरण में असमानता आई बल्कि राष्ट्रीय एकीकरण के स्तर पर भी प्रभाव पड़ा । इससे एक एकीकृत भारत के निर्माण का कार्य अधिक कठिन हो गया ।

देश के सीमित औद्योगिक विकास का भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज में दो नए सामाजिक वर्गो ने जन्म लिया और उनका विकास हुआ । ये वर्ग थे-औद्योगिक पूंजीपति वर्ग तथा आधुनिक मजदूर वर्ग । ये दोनों वर्ग भारतीय इतिहास में बिल्कुल नए थे क्योंकि आधुनिक खानें, उद्योग और परिवहन के साधन नए थे ।

यद्यपि वे वर्ग भारतीय जनसंख्या के अत्यंत छोटे भाग थे तथापि उन्होंने नई टेक्नोलोजी, आर्थिक संगठन की नई प्रणाली, नए सामाजिक संबंधों, नए विचारों और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व किया । वे नई परंपराओं, रीति-रिवाजों, जीवन के तौर-तरीकों से दबे हुए नहीं थे । सर्वोपरि बात यह थी कि उनका दृष्टिकोण अखिल भारतीय था । इसके अलावा देश के औद्योगिक विकास में दोनों की गहरी दिलचस्पी थी । इसलिए उनका आर्थिक और राजनीतिक महत्व तथा उनकी भूमिकाए उनकी संख्या के अनुपात में काफी अधिक थीं ।

दरिद्रता और अकाल

भारत में ब्रिटिश शासन की एक प्रमुख बात, तथा ब्रिटिश आर्थिक नीतियों का एक खास परिणाम हुआ भारतीय जनता में अत्यंत दरिद्रता का साम्राज्य । यद्यपि इतिहासकारों में इस बात को लेकर मतभेद है कि ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में गरीबी बढ़ती जा रही थी या नहीं; तथापि इस तथ्य पर कोई मतभेद नहीं है कि पूरे ब्रिटिश शासनकाल के दौरान अधिकतर भारतीय हमेशा भुखमरी के कगार पर रहते थे । समय बीतने के साथ-साथ भारतीयों के लिए रोजगार या जीविका प्राप्त करना कठिन होता गया। ब्रिटिश आर्थिक शोषण देशी उद्योगों का ह्रास, उनकी जगह लेने में आधुनिक उद्योगों की विफलता, करों की ऊंची दरें, भारत से धन ढ़ोकर ब्रिटेन ले जाना, और कृषि का एक पिछड़ा हुआ ढांचा तथा गरीब किसानों का जमींदारों, भूस्वामियों, राजाओं, महाजनों, व्यापारियों और राज्य द्वारा शोषण--इन सबने भारतीय जनता को अत्यंत दरिद्र बना दिया तथा उसे प्रगति करने नहीं दिया । भारत की औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था एक निम्न आर्थिक स्तर पर ठहरी रही ।

जनता की दरिद्रता की पराकाष्ठा अकालों की एक श्रृंखला में हुई, जिन्होंने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारत के सभी हिस्सों में अपनी विनाशकारी लीला दिखाई । इनमें से पहला अकाल पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 1860-61 में पडा जिसमें दो लाख आदमियों की जानें गई । 1865-66 में अकाल ने उडीसा, बंगाल, बिहार और मद्रास को धर दबोचा और 20 लाख लोगों की जानें ले लीं । केवल उड़ीसा में 10 लाख मर गए । 1868-70 के

1943 में बंगाल का अकाल, जैनुल आबेदीन द्वारा बनाया गया रेखा चित्र

Scanned with CamScanner

अकाल में 14 लाख से अधिक लोग पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बंबई और पंजाब में मर गए । राजपुताना भी अकाल से प्रभावित था । वहां के अनेक राज्यों को अपनी एक-चौथाई से एक-तिहाई जनसंख्या तक से हाथ धोना पड़ा ।

उस समय तक का शायद सबसे भंयकर अकाल 1876-78 में मद्रास, मैसूर, हैदराबाद, महाराष्ट्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पंजाब में पड़ा । महाराष्ट्र में 8 लाख लोग मरे । मद्रास मे लगभग 35 लाख लोगों की जानें गई । मैसूर को अपनी करीब 20 प्रतिशत जनसंख्या से हाथ धोना पड़ा तथा उत्तर प्रदेश में 12 लाख से अधिक लोग मर गए । सूखे के कारण 1896-97 और फिर 1899-1900 में देशव्यापी अकाल पड़ा । 1896-97 के अकाल से साढ़े नौ करोड़ से अधिक लोग प्रभावित हुए जिनमें से करीब 45 लाख मर गए । 1899-1900 का अकाल उसके तुरंत ही बाद आया और उससे व्यापक तबाही हुई । राहत कार्यों द्वारा लोगों की जानें बचाने में सरकारी प्रयत्नों के बावजूद 25 लाख से अधिक व्यक्ति मर गए । इन बड़े अकालों के अलावा अनेक स्थानीय अकाल पड़े तथा अभाव की स्थितियां आई । एक ब्रिटिश लेखक विलियम डिग्बी ने हिसाब लगाया है कि 1854 से 1901 तक कुल मिलाकर 2,88,25,000 से अधिक लोग अकाल से मरे । एक और अकाल 1943 में बंगाल में पड़ा जिसमें करीब 30 लाख लोग मर गए । ये अकाल और उनमें मरने वालों की भारी संख्या इस बात का संकेत देती है कि गरीबी और भुखमरी की जड़े भारत में कितनी गहरी हो गई थीं ।

भारत स्थित अनेक अंग्रेज अधिकारियों ने उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान भारत की दरिद्रता की भयंकर वास्तविकता को स्वीकार किया । उदाहरण के लिए, गवर्नर-जनरल की कौंसिल के एक सदस्य चार्ल्स इलियट ने टिप्पणी की :

> "मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आधी कृषि जनसंख्या को एक साल के अंत में से दूसरे साल के अंत तक यह पता नहीं होता कि पेट भर खाना कैसा होता है ।"

'इंपीरियल गजेटियर' के संकलनकर्ता विलियम हटर ने स्वीकार किया कि "भारत के 4 करोड़ लोगों को अपर्याप्त भोजन पर जीवन बिताने की आदत हो गई है ।" बीसवी सदी में स्थिति और भी खराब हो गई एक भारतीय को उपलब्ध भोजन की मात्रा में 1911 और 1941 के बीच 30 वर्षों के दौरान 29 प्रतिशत तक की कमी हुई ।

भारत के आर्थिक पिछड़ेपन और गरीबी के अनेक अन्य संकेत हैं । राष्ट्रीय आय संबंधी प्रसिद्ध विशेषज्ञ कोलिन क्लर्क ने हिसाब लगाया है कि 1925-34 के दौरान संसार में सबसे कम प्रति व्यक्ति आय भारत और चीन की थी । एक अंग्रेज की आय एक भारतीय की आय से 5 गुना थी । इसी प्रकार बीसवीं सदी के चौथे दशक के दौरान, आधुनिक चिकित्सा विज्ञानों तथा सफाई के कारण हुई प्रगति के बावजूद एक भारतीय की औसत जीवन प्रत्याशा केवल 32 वर्ष थी । अधिकतर पश्चिम यूरोपीय और उत्तर अमरीकी देशों में औसत आयु 60 वर्ष से ऊपर थी ।

भारत का आर्थिक पिछड़ापन और उसकी निर्धनता प्राकृतिक संसाधनों की कमी के कारण नहीं थी, वह मनुष्य निर्मित थी । भारत के प्राकृतिक संसाधन भरपूर मात्रा में थे । यदि उनका ठीक प्रकार से प्रयोग किया जाता तो वे जनता में पर्याप्त समृद्धि ला सकते थे । भारत एक विरोधाभासी चित्र प्रकट करता था - एक समृद्ध देश, जिसमें निर्धन लोग रहते थे । इस स्थिति के कारण थे - विदेशी शासन और शोषण और एक पिछड़ी हुई कृषि और औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था जो वस्तुतः उसके पूरे ऐतिहासिक और सामाजिक विकास का परिणाम थी ।

भारत की भौगोलिक स्थिति या प्राकृतिक संसाधनों की कमी या यहां के लोगों में अंतर्निहित कोई चारित्रिक कमी अथवा क्षमता की अभाव भारत की गरीबी का कारण नहीं था । यह मुगल काल का अवशेष भी नहीं था और न ही यहां की गरीबी ब्रिटिश पूर्व अतीत का नतीजा था । मुख्य रुप से यह पिछली दो सदियों के इतिहास का नतीजा था । भारत इसके पहले किसी भी रुप में पश्चिमी देशों की तुलना में पिछड़ा हुआ देश नहीं था उस समय दुनिया के देशों के बीच रहन-सहन के स्तर में बहुत ज्यादा फर्क नहीं था । संक्षेप में, इस दौरान पश्चिमी देशों का विकास हुआ, उनमें संपन्नता आई और भारत को आधुनिक उपनिवेशवाद के अधीन होना पड़ा तथा इसका विकास अवरुद्ध कर दिया गया । जिन दिनों भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था, आज के सभी विकसित देशों ने लगभग उसी

Scanned with CamScanner

दौरान अपना विकास किया था । अधिकांश विकसित देशों का विकास 1850 के बाद हुआ । दुनिया के विभिन्न हिस्सों के जीवन स्तर में 1750 तक बहुत अधिक फर्क नहीं था । इस संबंध में ध्यान देने की दिलचस्प बात यह है कि ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के शुरु होने की तिथियां और बंगाल पर ब्रिटेन की विजय की तिथि बहुत पास पास है ।

एक आधारभूत तथ्य यह है कि उसी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रक्रिया ने ब्रिटेन में औद्योगिक विकास और सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रगति को जन्म दिया लेकिन उसी ने भारत में आर्थिक अल्पविकास और सामाजिक तथा सांस्कृतिक पिछड़ेपन को जन्म देकर उसको कायम रखा इसकी वजह साफ है । ब्रिटेन ने भारतीय अर्थव्यवस्था को अपनी अर्थव्यवस्था के अधीन रखा तथा अपनी जरुरतों के मुताबिक और अपनी जरुरतों के हिसाब से भारत की आधारभूत सामाजिक प्रवृत्तियों को उसने निर्धारित किया । इसका नतीजा यह हुआ कि भारतीय कृषि और उद्योग में ठहराव आया । जमींदार, भूस्वामियों, राजे रजवाड़ों, सूदखोरों, सौदागरों, पूंजीपतियों और विदेशी शासकों तथा उनके अहलकारों ने किसानों और मजदूरों का जमकर शोषण किया । देश में गरीबी और बीमारी फैली और लोग अर्धभूखमरी के कगार पर पहुंच गए ।

अभ्यास

1. निम्नांकित पदों के अर्थ स्पष्ट कीजिए :
   संरक्षण की नीति, साम्राज्यकीय प्राथमिकता, अनुपस्थित भूस्वामी ।
2. ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत को किस प्रकार आर्थिक उपनिवेश के रुप में बदल दिया गया ?
3. उन विभिन्न कारकों का विवेचन कीजिए जिनके कारण अंततः भारतीय उद्योग चौपट हो गए भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर इसका क्या प्रभाव पड़ा ?
4. ब्रिटिश नीतियों का भारत के किसानों पर क्या असर पड़ा, इसका विवेचन कीजिए । उन कारकों को स्पष्ट कीजिए जिनके कारण ग्रामीण दरिद्रता पैदा हुई तथा भारत में बहुधा अकाल पड़े ।
5. वे कौन से कारण थे जिनके चलते भारत में पुराने जमींदार खत्म हो गए और नए भूस्वामी अस्तित्व में आए। पुरानी जमींदारी प्रथा की तुलना में नए भूस्वामियों की क्या विशेषताएं थीं ।
6. ब्रिटिश शासन के दौरान जो न्याय प्रणाली तथा कानून व्यवस्था चलाई गई, उससे सूदखोरों को किस तरह फायदा पहुंचाया ।
7. ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय कृषि का विकास अवरुद्ध था । इसके कारणों का विवेचन कीजिए ।
8. भारत में आधुनिक उद्योगों के विकास की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए ब्रिटिश शासन ने किस तरह इन उद्योगों के विकास पर रुकावट डाली ।
9. भारत के मानचित्र में उन केंद्रों को दर्शाइए जहां ब्रिटिश शासन के दौरान आधुनिक उद्योग स्थापित किए गए थे ।
10. ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में पड़ने वाले अकालों की सूची तैयार कीजिए । उनके सामने जिस वर्ष अकाल पड़ा था, उसका भी संकेत कीजिए और यह भी बताइए कि किस क्षेत्र में अकाल पड़ा और उसमें कितने लोगों की मृत्यु हुई ।

चार्ल्स इलियट :- मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आधी कृषि जनसंख्या को एक साल के अंत में से दूसरे साल के अंत तक यह पता नहीं होता कि पेट भर खाना कैसा होता है।

विलियम डिग्बी :- (1834-35) :- इस दरिद्रता के समान दरिद्रता पाशविक के इतिहास में शायद ही कभी रही है। पुनकरों की हड्डियाँ भारत के मैदानों को सिरजित कर रही है।

इंपीरियल गजेटियर :- विलियम हंटर :- भारत के 4 करोड़ लोगों को अपर्याप्त भोजन पर जीवित रहने की आदत हो गई।

Scanned with CamScanner